

आचार्य भर्तृहरि की त्रयीवाग्-अवधारणा

डॉ. सदानन्द त्रिपाठी

वाक्यपदीयकारस्य भर्तृहरेर्मनीषिणः ।

वर्णयते शोधपत्रेऽत्र त्रयीवागवधारणा ॥

- 'दयालू' पाहवस्य सदानन्दत्रिपाठिनः

'वाग् वै ब्रह्म'^१ वाक् (ग) वाणी अथवा शब्द ही ब्रह्म है। 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वममृतं यच्च मर्त्यम्। अथेद्वाग् बुभुजे वागुवाच पुरुत्रा वाचो न पदं यच्च नाह'^२ अर्थात् वाक्त्व ही सम्पूर्ण भुवनों के रूप में समुत्पन्न होता है, वाक् से ही नित्य और अनित्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वाक् ही भोक्त्री है; वाक् ही विविध अर्थों को प्रकट करती है अथवा वाक् ही अनन्त प्राणियों में उपस्थित होकर अभिव्यक्त होती है, वाक् से अतिरिक्त कोई और अभिधेय नहीं है। भगवती श्रुति के इन प्रमाण वचनों के आलोक में न्याय, मीमांसा, वेदान्त तथा व्याकरणशास्त्र के महामनीषी, आवन्तिक, शब्दाद्वैतब्रह्मवादी, महावैयाकरण आचार्य भर्तृहरि ने व्याकरणदर्शन के शिरोभूषण ग्रन्थरत्न अपने 'वाक्यपदीय' में त्रयीवाक् अर्थात् वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती वाक् का विवेचन इदम्प्रथमतया उपस्थापित किया है। परावाक् को आप पश्यन्ती वाक् में ही अन्तर्भावित, अन्तर्भुक्त स्वीकार करते हैं।

'वाक्' शब्द की व्युत्पत्ति 'अदादिधातुगणपठित' 'वच् परिभाषणे' धातु से उणादिसूत्र 'क्विच्चिप्रच्छिश्चिस्तुद्रप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च'^३ क्विप् प्रत्यय-विधानपूर्वक दीर्घ होने से, सम्प्रसारण के अभाव में स्त्रीत्वविवक्षा में होती है।^४ भर्तृहरि के समकालीन अथवा परवर्ती कोशकार श्रीमदमरसिंह ने 'वाक्' शब्द के "ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाण्वाणी सरस्वती"^५ ये सात पर्याय नाम उल्लिखित किये हैं। जैनाचार्य श्रीहेमचन्द्र ने इस क्रम को परिवर्द्धित करते हुये "वाग्ब्राह्मी भारती गौर्गीर्वाणी भाषा सरस्वती।" श्रुतदेवी^६ ये नव (९) नाम परिगणित किये हैं। श्रीमद्यास्कमुनि ने निरुक्तशास्त्र में इन पूर्वोक्त

^१ बृहदारण्यकोपनिषद् ४/१/२

^२ वाक्यपदीयम् १/१२० 'हरिवृत्ति' में उद्धृत ऋष्यन्त्र

^३ उणादिसूत्राणि २/५४

^४ संस्कृत-हिन्दीकोश, पृष्ठ ९१२-९१३, श्रीवामनशिवरामाआपटेकृत

^५ अमरकोशः १/६/१ (पूर्वार्द्धम्), शब्दादिवर्गः, "सुधा-रामाश्रमीसंस्कृतटीका

^६ अभिधानचिन्तामणिः देवकाण्डः २/१५५ कारिका

पर्याय नामों में संख्यावृद्धि निर्दिष्ट करते हुये वाक् के 'श्लोकः धारा इळा।' इत्यादि सहित सत्तावन ५७ नाम विज्ञापित किये हैं -

“वाङ्गामान्युत्तराणि सप्तपञ्चाशत् ॥”^१

प्रत्येक पद, शब्द अपरिमित शक्तिसम्पन्न होता है किन्तु उसके निहितार्थ का सम्यग् अवबोध उसके निर्वचन से होता है। अत एव वाक् शब्द की निरुक्ति अधोलिखितानुसार प्रस्तुत कर रहे हैं -

(क) 'वक्ति, उच्यन्ते, गद्यन्ते प्रचुराः शब्दा यया सेति वाक्'।^२

अर्थात् जिसके द्वारा प्रचुर मात्रा में शब्द उच्चरित होते हैं, उसका नाम 'वाक्' है।

(ख) १. उच्यते इति वाक् वाणी। उणादिवृत्ति २/५७, श्वेतवनवासीकृत।

२. उच्यते वाक् शब्दः। उणादिसूत्र २/५४, नारायणभट्टकृत प्रक्रियासर्वस्व।

३. उच्यते वाक् वाणी। उणादिवृत्तिसूत्र २/२३, दुर्गसिंहकृत।

४. वाक् सरस्वती। उणादिसूत्रवृत्ति २/५७, उज्वलदत्तकृत

५. वक्ति ब्रवीति वा वाक् वाणी। दशपादी उणादिवृत्ति १०/२ माणिक्यदेव कृत

६. वक्ति शब्दानुच्चारयति यया सा वाक्। उणादिकोषः २/५७ स्वामिदयानन्दकृत।^३

आचार्य भर्तृहरि का सुदृढ अभिमत है कि प्रत्येक ज्ञान में वाक् शब्द के आकार का अनुगम सर्वात्मना रहता ही है। ज्ञान की नित्य-सदैव रहने वाली स्वाभाविक वाग्रूपता, यदि कदाचित् उत्क्रान्त हो जाय, नष्ट हो जाय या न मानी जाय तो प्रकाश अर्थात् ज्ञान, ज्ञान ही नहीं रह जायेगा, प्रकाश को जो स्वकीय प्रकाशताख्य व्यापार है, वह वाग्रूपता के न रहने पर नहीं होगा, क्योंकि वह वाग्रूपता वस्तु का निरूपण करने वाली है। अतएव, इसे प्रत्यवमर्शिनीशक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है। वह वाक् सभी विद्याओं, सभी शिल्पों और कलाओं की प्रयोजिका है। वाग्रूपता के कारण ही अधीन होकर उत्पन्न समुत्थित सभी पदार्थ यह घट है, यह पट है, इस प्रकार पृथक्-पृथक् निरूपित होते हैं। प्रयोजक का उपदेश और प्रयोज्य की समीहा अथवा चेष्टा आदि सभी वाग्रूपता के अनुसार ही कल्पित होती हैं। यह वाग्रूपता सांसारिक प्राणियों की संज्ञा या चेतना है, जो शरीर के बाहर और अन्दर वर्तमान रहती है। शब्द वाक् बाहर तथा अन्दर सर्वत्र व्यापक होने से विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण प्राणियों में जो चैतन्य तत्त्व है, वह वाङ्मात्रा को छोड़कर नहीं देखा जाता। यथा -

^१ निरुक्तम्, नैघण्टुककाण्डम् अध्यायः २/ पादः ७ / खण्डः २३, पृष्ठं ९९

^२ उणादिप्रयोगशस्विनीमञ्जूषा, द्वितीयः पादः, पृष्ठं ६२-६३
सम्पादकः डॉ. रुद्रदेवत्रिपाठी, मन्दसौर (म.प्र.) वास्तव्यः

^३ उणादिनिरुक्तिव्युत्पत्तिकोषः, पृष्ठं ४१५

ग्रन्थकर्ता-लेखकः प्रो. रूपकिशोरः शास्त्रीः. सम्पादकः डॉ. देवानन्दशुक्लः प्रकाशकः महर्षिसान्दीपनिः राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठानम्, उज्जयिनी (म.प्र.) प्रथम संस्करणम् २०१४ ख्रिस्ताब्दः।

वाग्रूपता चेदुत्कामेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥ १२४ ॥
सा सर्वविद्याशिल्पानां कलानां चोपबन्धनी ।
तद्वशादभिनिष्पन्नं सर्वं वस्तु विभज्यते ॥ १२५ ॥
सैषा संसारिणी सञ्ज्ञा बहिरन्तश्च वर्त्तते ।
तन्मात्रामन्यतिकान्तं चैतन्यं सर्वजन्तुषु जातिषु ॥ १२६ ॥^१

चैतन्य में जो यह वाग्रूपता का अनुगम या उपस्थिति रहती है, उसी से लोक में ससञ्ज्ञ और उसके अभाव में विसञ्ज्ञ - यह कथन किया जाता है। प्राणियों में सञ्ज्ञा है वह वाक् वाणी ही है। सम्पूर्ण शरीरधारी प्राणियों को वाक् ही कार्य करने के लिये सचेष्ट बनाती है - प्रवृत्त करती है। वाक् वाणी के उत्क्रान्त हो जाने पर वाक्त्व के अभाव में काष्ठ की भित्ति के समान यह व्यक्ति अथवा देह विगत-सञ्ज्ञ दिखलाई देता है।

अर्थ क्रियासु वाक् सर्वान् समीहयति देहिनः ।

तदुत्क्रान्तौ विसंज्ञोऽयं दृश्यते काष्ठकुड्यवत् ॥ १२७ ॥^२

हरिवृत्तिः - अन्तः सञ्ज्ञानामपि सुखदुःखसंविन्मात्रा यावद्वाग्रूपतानुवृत्तिस्तावदेव भवति। बहिः सञ्ज्ञेषु तन्निबन्धनो लोक व्यवहारस्तदभावान्नियतमुत्सीदेत्। नहि सा चैतन्येनानाविष्टा जातिरस्ति, यस्यां स्वपरसम्बोधो यो वाचा नानुगम्यते। तस्माच्चित्क्रियारूपमलब्धवाक् शक्तिपरिग्रहं न विद्यते।^३

वाग् ही सभी अवस्थाओं में व्यवहार निबन्धनी है। जिस प्रकार प्रविभाग जाग्रदवस्था में कर्ता वाग् वाणी से प्रेरित होकर कार्य करने में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी वाक् ही भोक्ता, भोग्य और भोगरूप में परिणत हो जाती है -

प्रविभागे यथा कर्ता तथा कार्ये प्रवर्त्तते।

अविभागे तथा सैव कार्यत्वेनावतिष्ठते ॥ १२८ ॥^४

आचार्यभर्तृहरि ने इस कारिका के प्रणयन में उपनिषत् प्रमाण वेदान्तदर्शन के उस सिद्धान्त को स्वीकार किया है जिसके अनुसार भोक्ता अर्थात् प्रत्यागात्मा सम्पूर्ण स्वप्नसृष्टि का ईश्वर एवं विकारग्राम विकारसमूह का उपादान बनता हुआ अपने से ही अपना विभाग करके भोक्ता, भोक्तव्य भोग्य और

^१ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्, कारिका १२४-१२५-१२६

^२ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्, कारिका १२७

^३ वाक्यपदीयम्, १/१२७ 'हरिवृत्तिः'

^४ वाक्यपदीयम्, १/१२८

भोगात्मक पृथक्-पृथक् पदार्थों की रचना करके स्वप्नदशा में प्रवृत्त होता है, 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्महोतत्।'^१

अन्यान्य दर्शन भी वाक् द्वारा प्रकल्पित वस्तु से सम्बन्ध रखते हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् वाक् वाणी शब्द का ही विकार है। यह संसार स्वमात्रा अर्थात् आत्मांश अथवा नानाविध जीवात्माओं का ही रूप है। यह स्वीकार किया जाये अथवा परमात्रा या परमेश्वर का रूप माना जाये, यथा श्रुति या शब्द के द्वारा व्यवहृत होता है, वैसा ही रूढ हो जाता है। उस श्रुति या वाक् के द्वारा अर्थ की कल्पना की जाती है -

स्वमात्रा परमात्रा वा श्रुत्या प्रकूम्यते यथा।

तथैव रूढतामेति तथा ह्यर्थो विधीयते ॥ १२९ ॥^२

महावैयाकरण, दार्शनिक आचार्यभर्तृहरि की प्रबला मान्यता है कि व्याकरणशास्त्र शब्दशास्त्र अन्यान्य स्मृतियों के सदृश श्रुति एवम् अनादिशिष्टपरम्परा व्यवहारमूलक होने से स्मृति है तथा उसका प्रामाण्य सिद्ध है। प्रकृत व्याकरणस्मृति सर्वविध वाक् वाणी का विषय है। आपश्री की अवधारणा है कि करण, प्राण एवं बुद्धिरूप अनेक तीर्थों या स्थानों में भिन्न वैखरी, मध्यमा तथा पश्यन्ती इस त्रयीवाक् का यह व्याकरणशास्त्र अद्भुत, उत्कृष्ट आश्रय है -

वैखर्यामध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।

अनेकतीर्थं भेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम् ॥ १४३ ॥^३

हरिवृत्तिः - परैः संवेद्यं यस्याः श्रोत्रविषयत्वेन प्रतिनियतं श्रुतिरूपं सा संस्कारा च। तथा - 'याऽक्षे, या दुन्दुभौ, या वेणौ (या) वीणायाम्' इत्यपरिमाणभेदा। मध्यमा त्वन्तःसन्निवेशिनी परिग्रहीतक्रमेव बुद्धिमात्रोपादाना। सा तु सूक्ष्मप्राणवृत्त्यनुगता क्रमसंहारभावेऽपि व्यक्तप्राणपरिग्रहैव केषाञ्चित्। प्रतिसंहतक्रमा सत्यप्यभेदे समविष्टक्रमशक्तिः पश्यन्ती। सा चलाचला, प्रतिलब्धसमाधाना, चावृता विशुद्धाच, सन्निविष्टज्ञेयाकारा, प्रतिलीनाकारा निराकारा च, परिच्छिन्नार्थप्रत्यवभासा, संसृष्टार्थ प्रत्यवभासा, प्रशान्तसर्वार्थप्रत्यवभासा चेत्यपरिमाणभेदा।^४

प्रकृत-प्रसङ्ग में ध्यातव्य है कि आचार्य भर्तृहरि महाभाग ने वैखरी वाक् के अपरिमित भेदों के सन्दर्भ में शकट के अक्ष (धुरी) का शब्द, दुन्दुभि, वेणु वंशी और वीणा आदि को अर्थवाद उपस्थापित करने के लिये उद्धृत किया है, उसका मूल वैदिकस्रोत एवम्बिध है -

^१ अथर्ववेदीया नारदपरिव्राजकोपनिषद् नवमोपदेशः / मन्त्रः ११ उत्तरार्द्धम्

^२ वाक्यपदीयम्, १/१२९

^३ वाक्यपदीयम्, १/१४३ कारिका

^४ वाक्यपदीयम्, १/१४३ कारिका, 'हरिवृत्तिः'

‘वाग् वै देवेभ्योऽपाक्रामद्यज्ञायातिष्ठमाना सा वनस्पतीन् प्राविशत्। सैषा वाग् वनस्पतिषु वदति या दुन्दुभौ या तूणवे, वीणायाम्।’^१ - (कृष्णयजुर्वेदीया तैत्तिरीयसंहिता ६.१.४)

भर्तृहरि वाक् के तीन अवयव - वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती के लिये परावाक् का परित्याग करके इतिहास के निदर्शन-रूप में ‘महाभारत’ के कतिपय पद्यों को पूर्वोक्त कारिका की ‘स्वोपज्ञ हरिवृत्ति’ में उद्धृत करते हैं -

हरिवृत्तिः - तथेतिहासेषु निदर्शनान्युपलभ्यन्ते -

गौरिवप्रक्षरत्येका रसमुत्तमशालिनी ।
दिव्यादिव्येन रूपेण भारती गौः शुचिस्मिता ॥
एतयोरन्तरं पश्य सूक्ष्मयोः स्पन्दमानयोः ।
प्राणापानान्तरे नित्यमेका सर्वस्य तिष्ठति ॥
अन्या त्वप्रेर्यमाणेव विना प्राणेन वर्त्तते ।
जायते हि ततः प्राणो वाच्यमाप्याययन् पुनः ॥
प्राणेनाप्यायितासेयं व्यवहारनिबन्धना ।
सर्वस्योच्चासमासाद्य न वाग्वदति कर्हिचित् ॥
घोषिणी जातिनिर्घोषा अघोषा च प्रवर्त्तते ।
तयोरपि च घोषिण्योर्निर्घोषैव गरीयसी ॥^२

ज्ञातव्य है कि गीताप्रेस, गोरखपुर (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित सम्प्रति उपलब्ध संस्करण में भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासविरचित महाभारत के अश्वमेधिकपर्वान्तर्गत-अनुगीतापर्वस्थित “ब्राह्मणगीता” के इक्कीसवें अध्याय में ये पद्य क्रमांक १९, २०, २१, २२ तथा २३ में परिवर्तित एवं क्रम-भेद के साथ प्राप्त होते हैं। इनमें वासुदेव श्रीकृष्ण के द्वारा जीवतत्त्व के प्रतिनिधि-प्रतीक सखा अर्जुन को उपदिष्ट किया गया है।

एतदनन्तर भर्तृहरि वाक्यतत्त्व के अवयवत्रयस्वरूपा वैखरी, मध्यमा तथा पश्यन्ती का व्यावहारिक स्वरूप लक्षण-विनिर्देश करते हैं -

हरिवृत्तिः - पुनश्चाह -

स्थानेषु विधृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा।
वैखरी वाक्प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धना ॥ १ ॥

^१ कृष्णयजुर्वेदीया तैत्तिरीयसंहिता ६/१/४

^२ वाक्यपदीयम्, १/१४३ कारिका, ‘हरिवृत्तिः’

केवलं बुद्ध्युपादानां क्रमरूपानुपातिनी।
 प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमावाक् प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
 अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहतक्रमा ।
 स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मावागनपायिनी ॥ ३ ॥
 सेयमाकीर्यमाणापि नित्यमागनतुकैर्मलैः ।
 अन्त्या कलेव सोमस्य नात्यन्तमभिभूयते ॥ ४ ॥
 तस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्त्तते ।
 पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम् ॥ ५ ॥
 प्राप्तोपरागरूपा सा विष्टवैरनुबन्धिभिः ।
 वैखरी सत्त्वमात्रेव गुणैर्न व्यवकीर्य ते ॥ ६ ॥^१

यह त्रयीवाग् चैतन्य रूप कारण के परिणाम से अनन्त-अवाच्य परिमाणों वाली है। अपने नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात चार भेदों वाली वैखरी वाग् रूप से मनुष्यों में भासित होती है। तीन वाणियाँ तो मनीषी विद्वानों द्वारा ही जानी जाती हैं। नामाख्यातादि चतुर्विध वाक् का कुछ ही अंश व्यावहारिक है, अन्य तो सामान्य व्यवहार से परे ही है।

हरिवृत्तिः - सैषा त्रयीवाक् चैतन्यग्रन्थिविवर्त्तवदनाख्येयपरिमाणा तुरीयेण मनुष्येषु प्रत्यवभासते। तत्रापि चास्याः किञ्चिदेव व्यावहारिकम्, अन्यत्तु सामान्यव्यवहारातीतम्। आह खल्वपि -

**चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
 गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥^२**

- (ऋग्वेदसंहिता १/१६४/४५, अथर्वसंहिता ९/१०/२७)

आचार्यभर्तृहरि ने परावाक् का कहीं पर भी उल्लेख नहीं किया है। ये वाक् के केवल अवयवत्रय - वैखरी, मध्यमा तथा पश्यन्ती को ही मान्यता प्रदान करते हैं। आपके इस सिद्धान्त से कतिपय परवर्त्ती आचार्यों ने यह निष्कर्ष स्थापित किया कि व्याकरणदर्शन में परावाक् का कोई स्थान नहीं है। अतएव अभिनवगुप्तपादाचार्य ने लिखा है -

ननु पश्यन्त्येव परं तत्त्वमिति जरद्वैयाकरणाः मन्यन्ते ॥^३

अर्थात् प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार पश्यन्ती ही परमतत्त्व है परावाक् नहीं। इस सम्बन्ध में क्षेमराज का कथन है - “शब्दब्रह्ममयं पश्यन्तीरूपम् आत्मतत्त्वमिति वैयाकरणाः।”^४ अर्थात् वैयाकरणों की

^१ वाक्यपदीयम्, १/१४३ कारिका, ‘हरिवृत्तिः’

^२ वाक्यपदीयम्, १/१४३ कारिका, ‘हरिवृत्तिः’

^३ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, द्वितीयभाग, पृष्ठ १९१ तथा १६५

^४ प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, पृष्ठ ४३, अङ्घार संस्करणम्

मान्यतानुसार पश्यन्ती ही परम तत्त्व है। वाक्यी का समुल्लेख आचार्यसुचरितमिश्रमहाभाग ने किया है-

त्रेधा हि वाचं विभजन्ते वैखरी मध्यमा सूक्ष्मा चेति। यथोक्तम् -

शब्दब्रह्मैव तेषां हि परिणामि प्रधानवत्।

वैखरीमध्यमासूक्ष्मा वागवस्था विभागतः ॥^१

वाक्यपदीय के टीकाकार हेलाराज ने भर्तृहरि के सिद्धान्त का समर्थन करते हुये पश्यन्ती को ही परावाक् के रूप में व्यवहृत किया है -

संविच्च पश्यन्तीरूपा परावाक् शब्दब्रह्ममयीति ब्रह्मतत्त्वं शब्दात् पारमार्थिकान्न भिद्यते।

विवर्तदशायान्तु वैखर्यात्मना भेदः ॥^२

काश्मीर शैवागम के महाभट्टारक परमाचार्य सोमानन्द और उनके टीकाकार उत्पलाचार्य भर्तृहरि के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं और परावाक् का पश्यन्ती में उपचार स्वीकार करते हैं। यथा -

इत्याहुस्ते परं ब्रह्म यदनादि तथाक्षयम्।

तदक्षरं शब्दरूपं सा पश्यन्ती परा हि वाक् ॥

- (शिवदृष्टिः ३/१५, तथा उत्पलाचार्यकृताटीका)

निष्कर्षतः आचार्यश्रीभर्तृहरि का वाग्दर्शन स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन करता है जो कि अन्ततोगत्वा शक्तिस्वरूप प्रतिभा या महासत्ता पर आधारित है। वाक्यपदीय का वाक्यी विवेचन धार्मिक मान्यताओं की दृष्टि से सर्वथा तटस्थ और शब्दब्रह्माद्वैतवाद के विचारसौन्दर्य से परिपूर्ण है।

डॉ. सदानन्द त्रिपाठी

शासकीय : संस्कृत महाविद्यालयः

उज्जयिनी (म.प्र.) ४५६००१

^१ मीमांसाश्लोकवार्तिकम्, काशिका नाम्नी टीका, पृष्ठ २४८

^२ वाक्यपदीयम्, तृतीयकाण्डम्, द्रव्यसमुद्देशः ११, हेलाराजकृताटीकायाम्
